ISSN: 0974-5823 Vol. 7 (Special Issue 5, April-May 2022)
International Journal of Mechanical Engineering

महिला संत कवयित्री मीरा बाइ के काव्य पर आचार्य रजनीश (ओशो) की अभिनव दृष्टि

डॉ. शाहिद हुसैन
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
डॉ. सी. वी रामन विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

ओशो मीरा को कवयित्री नहीं मानते, वे उन्हें प्रेम की पुजारिन मानते हैं, जो कृष्ण की भक्ति व प्रेम में खो गई है और जिसने भक्ति के मार्ग पर चलकर परमात्मा तक की यात्रा तय की है। इसलिए वे कहते हैं – ''उसके पद सीधे साधे हैं। वह कोई कवयित्री नहीं है। बैठ बैठ कर मात्रा, छंद नहीं बिठाए हैं उसने। स्वस्फूर्त हैं ये वचन....मीरा से बड़े कवि हुए हैं, मगर मीरा सा बड़ा भक्त कहां? यह कविता बड़ी और है। अपरुषेय है। जैसे वेद अपरुषेय है, जैसे वेद उतरे हैं, ऋषियों में, जैसे कुरान उतरती है, मोहम्मद में– ऐसे ये वचन उतरे हैं मीरा में और जितने प्यार से गाया है, इतने प्यार से उसने गुंजाया है, अपने स्वाद को जिस रस से बांटा है, किसी ने कभी भी नहीं बाटा है। लाख मुसीबतों के बाद भी जीवन को हंसते हुए जीना, तो कोई मीरा से सीखे। वर्तमान समय में महिलाओं को पूर्ण आजादी प्राप्त है, किंतु तत्कालीन समय में मीरा को न केवल परिवार की वरन् समाज की भी निगाहों व भले बुरे वक्तव्य का सामना करना पड़ा, तब भी वह अपने प्रभु नाम स्मरण को नहीं भूली, उसने जो धन पाया वह मूल्यवान ही नहीं सर्वथा अमूल्य था। ओशो ने मीरा को भक्ति की श्रेणी में सर्वोपरि रखा है, उपर्युक्त समस्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है। उनके काव्य पर ओशो का पृथक दृष्टिकोण मीरा–काव्य को नई अर्थवत्ता और मूल्यवत्ता प्रदान करता है। यूं तो मीरा के अनेक पदों पर ओशो ने व्याख्यान दिया है, किंतु जिनमें कुछ अलग दृष्टिकोण झलकता था, उसे इस शोधपत्र में प्रस्तुत किया गया, ताकि उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हा सके।

''पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हांसी।
आत्मज्ञान बिन नर भटकत है, कहां मथुरा कहां कासी।
भवसागर सब हार भरा है, ढूंढत फिरत उदासी।
मीरा के प्रभु गिरिधरनागर, सहज मिले अबिनासी।''[1]

भक्तिमति मीराबाई का जन्म 1504 में और मृत्यु 1558 ईसवीं के मध्य हुई। इनके मूल नाम के संबंध में भी विद्वानों एवं समालोचकों ने अपने–अपने विचार रखे हैं। मीरा का संबंध विद्वान फारसी शब्द

'मीर' से जोड़ते हैं, जिसका अर्थ है 'परम पुरुष'। कुछ विद्वानों के मतानुसार मीरा शब्द संस्कृत के मीर शब्द का स्त्रीलिंग रूप है, जो सरस्वती, पृथ्वी, सरिता आदि अर्थों का बोधक है। गुजरात में बाई शब्द का प्रयोग स्त्रियों के लिए सम्मानार्थ होता है। अतः 'मीराबाई' नाम माता–पिता द्वारा ही दिया गया मूल नाम मानने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। उनका जन्म प्राप्त साक्ष्या के अनुसार मेड़ता के समीपवर्ती गांव कुड़की में राठौर वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। मीरा का जन्म मेड़तिया शाखा के प्रवर्तक रामदास राव दूदा के पुत्र राव रत्नसिंह के घर में हुआ। उनके पिता रत्नसिंह को कुड़की समेत 12 गांव की जागीर प्राप्त थी। लेकिन मीरा अधिक समय तक कुड़की में न रह पाई, क्योंकि दो वर्ष की अवस्था में ही उनकी माता का देहांत हो गया। राव रत्नसिंह व्यस्त रहन के कारण पुत्री के लालन–पालन में ज्यादा समय नहीं दे पाते थे अतः मीरा का और राव दूदा अपने पास ले आए। राव दूदा परम वैष्णव भक्त थे। बालिका मीरा के मन में उन्हीं के छत्रछाया में रहकर गिरधर गोपाल के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव का जन्म हुआ। इनके यहां उन दिनों शिक्षा की अच्छी व्यवस्था नहीं होने के कारण पारिवारिक वातावरण समाज में प्रचलित लोक गीत और राज महलों में आने वाले रमते जोगियों व सिद्ध सन्यासियों के भक्तिमय उपदेश ही मीरा की पाठशाला बने। मीरा का ह्रदय साधू सन्यासियों के संगति के प्रभाव वश भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ। जिसका प्रभाव और गूंज उनकी रचनाओं मे सर्वत्र विद्यमान है। कहा जाता है कि मीरा जब गर्भ में थी तो उनकी मां ने भगवान विष्णु एवं श्री कृष्ण की भक्ति पूरी तन्मयता से की। मीरा की मां अपने कमरे में दीवारों पर विष्णु तथा कृष्ण की मूर्ति बनाकर पूजा किया करती तथा दिन रात उनकी भक्ति में लीन रहती। इन सारी घटनाओं का असर गर्भ में पल रहे बच्चे पर पड़ा। फलस्वरूप मीरा बालपन से ही श्रीकृष्ण की पुजारिन हो गई। एक दूसरी घटना के अनुसार मीरा जब थोड़ी सज्ञान हो गई। उसने देखा कि पड़ोस में एक शादी हो रही है। घोड़े पर बैठे दूल्हे को देखकर दस या बारह साल की इस बालिका ने जिज्ञासावश अपनी मां से बार–बार पूछा कि घोड़े पर बैठा हुआ व्यक्ति कौन है? माँ के कहने पर कि वह दूल्हा है वह फिर पूछ बैठी – मेरा भी मेरा भी कोई दूल्हा होगा? बताना मां मेरा दूल्हा कौन है? मां किसी कार्य में व्यस्त होने कारण मीरा के बार–बार एक ही प्रश्न पूछे जाने पर परेशान हो उठी। पास ही श्री कृष्ण के मूर्ति पड़ी थी। मूर्ति को देख कर यूं ही विनोद पूर्ण ढंग से मां ने कह दिया –''इस मूर्ति के साथ तू हमेशा रहती है न! ले यह कृष्ण ही तेरे दूल्हा है। ''बस फिर क्या था? बालिका मीरा के मन में यह बात गहरे बैठ गई, तब से उसे ही वह पति और प्रेमी मान बैठी। कालांतर में चित्तौड़गढ़ के राजा सांगा के जेष्ठ पुत्र भोजराज के साथ में मीरा का विवाह 1516 इसवीं को संपन्न हुआ। किंतु जल्दी ही यह दुर्भाग्य में बदल गया। कुवंर भोजराज विवाह के केवल 7 वर्ष बाद ही स्वर्गवासी हो गए, जिससे मीरा के अंतर्मन की वेदना संघर्ष के रूप में रूपांतरित हो गई। मीरा तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती नहीं हुई और भक्ति रस में पूरी तरह लीन हो गई।

वैसे तो मीराबाई के स्फुट पद आजकल मीराबाई की पदावली के नाम से प्रकाशित रूप में प्राप्त है। फिर भी उनकी पूर्ण अपूर्ण रचनाएं कुल 11 की संख्या में प्राप्त होते हैं, जिनमें गीत गोविंद का टीका, नरसी जी का मायरा, राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यीमानु, मीरा की गरबी, रुकमणी मगल, नरसी मेहता की हुंडी, चरित (चरित्र) एवं स्फुट पद आदि सम्मिलित हैं। मीरा के पद काव्य की दृष्टि से जितने महत्वपूर्ण है, उससे भी अधिक संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सूरदास की भांति ही उन्होंने अपने पदों में विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है। मीरा ने तानसेन की भांति नए रागों का भी निर्माण किया है। यही कारण है कि 'मीरा की मलार' प्रसिद्ध है। मीराबाई के काव्य में भाव की सघनता, तरलता किंतु दृढ़ता का जो उत्कृष्ट रूप मिलता है वह अद्वितीय है। मीरा सबसे पहले एक भक्त थीं। उनके काव्य का कला पक्ष प्रायः नगण्य है। मीरा ने कला की साधना को लक्ष्य बनाकर अपने पदों की रचना नहीं की क्योंकि वे स्वतः एक कलाकार नहीं थीं। सांग रुपक के कई मार्मिक तथा सुंदर प्रयोग उनकी रचनाओं में देखने को मिल जाते हैं –

''या तन को दिवला करौं, मनसा करौं बाती हो।
तेल भरावौं प्रेम का, वारौं दिन राती हो।।
पाटी पारौं ज्ञान की, मति मांग संवारों हो।
तेरे कारण सांवरे, धन जोवन बारों हो।।
या सेजिया बहुरंग की, बहु फूल बिछाये हो।
पंथ जोहों स्याम का, अजहुं नहीं आये हो।।''[2]

इनके पदों में अपने मनमोहन के प्रति अपूर्व राग और विरह गर्भित प्रेम की सच्ची कहानी भी मिलती है। उनके पदों में भाव की जो सच्चाई और प्राकृत सौंदर्य है, उसे अलंकरण कि साज संवार की आवश्यकता नहीं, उनकी तो सादगी में ही अद्भुत शक्ति है, अनोखा जादू है। फिर भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, अनुप्रास आदि अलंकार अनायास ही आकर पदों का माधुर्य बढ़ाते हैं। दृष्टव्य है –

''गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि से मिलूं कैसे जाय।
ऊंची नीची राह रपटीली, पांव नहीं ठहराय।।
सोच सोच पग धरुं जतन से बार–बार डिग जाय।
ऊंचा नीचा महल पिया का, म्हां सूं चढ़्यो न जाय।।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछड़ी मीरा, घर में लीनी जाय।।''[3]

लाख मुसीबतों के बाद भी जीवन का हंसते हुए जीना, तो कोई मीरा से सीखे। वर्तमान समय में महिलाओं को पूर्ण आजादी प्राप्त है, किंतु तत्कालीन समय में मीरा को न केवल परिवार की वरन् समाज

की भी निगाहों व भले बुरे वक्तव्य का सामना करना पड़ा, तब भी वह अपने प्रभु नाम स्मरण को नहीं भूली, उसने जो धन पाया वह मूल्यवान ही नहीं सर्वथा अमूल्य था। मीरा ने गाया है –

''पायोजी मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो।।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो।।''[4]

मोक्ष प्राप्ति के दो मार्ग वेदो में बताए गए हैं – एक है ध्यान योग का मार्ग, जिसे महावीर एवं बुद्ध आदि मनीषियों ने अपनाया। और दूसरा है – भक्ति का मार्ग, जिसे मीरा ने अपनाया। यद्यपि दोनों ही मार्गों की मंजिल मोक्ष ही है। 'मोक्ष' चोटो पर पहुंचने के लिए दो प्रमुख रास्ते भिन्न–भिन्न है। 'योग' या ध्यान के माध्यम से 'ध्यानी' ज्ञान तक पहुंचता है, फिर भी जब तक उसमें भक्ति भाव का प्रस्फुटन नहीं हो जाए, तब तक उसका चोटी तक पहुंचना पूर्ण नहीं हो पाएगा। वस्तुतः ध्यान के द्वारा ज्ञान तक पहुंचते–पहुंचते भक्ति का अवगाहन हो ही जाता है। इस विराट भक्ति के सागर में मीरा ने ऐसा गोता लगाया है, जो कुछ विरले लोगों को नसीब हो पाया है। मीरा अकेली ऐसी संत महिला है, जिसने सिद्ध कर दिया है कि प्रभु को प्राप्त करने के लिए शारीरिक श्रम तपस्या आदि को अपनाना आवश्यक बिल्कुल भी नहीं है। वह तो अपने आराध्य के द्वार तक नाचते गाते पहुंची थी और अंत में शंकराचार्य के अद्वैत नामक महाभाव को उन्होने प्राप्त किया था। मीरा कहती है –

''मुझे लगन लगी प्रभु पावन की। पावन की घर आवन की।।
छोड़ काज अरू लाज जगत की। निसदिन ध्यान लगावन की।।
सूरत उजाली खुल गई ताली। गगन महल में जावन की।।
झिलमिलकारी ज्योति निहारी। जैसे बिजली सावन की।।
बाई मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरख निरख गुण गावन की।।''[5]

अठारहवीं सदी के अंतिम के वर्षों में औघोगिक क्रांति की शुरूवात हई। वैज्ञानिकीकरण, मशीनीकरण, पाश्चात्यायी–करण की संकल्पना ने मानव के दिलोदिमाग को तनाव, अशांति एवं निराशा से भर दिया। ऐसे लोमहर्षक वातावरण की पृष्ठभूमि में आचार्य रजनीश (ओशा) का आगमन एक क्रांतिकारी घटना थी। ओशो ने अपने सत्य के अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिये संत काव्य को माध्यम बनाया। 80 के दशक में रजनीश (ओशो) ने इन काव्यों को संतत्व की उसी ऊँचाई पर पहुँचा कर पुनः वही अर्थ किया जो इनका मूलार्थ था। जब संतो के काव्य पर ओशे की अभिनव दृष्टि पड़ती है तब यह माणि–कांचन संयोग देखने ही बनता है। आधुनिक मनुष्य और संतो के बीच ओशो एक

तारतमय बनाते हुए नजर आते हैं। इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि जब कोई संत साहित्य की शैली का अंगीकार विचाराभिव्यक्ति के लिए अगीकार करता है, तो वह साहित्य उत्तम साहित्य की पंक्ति में स्थान प्राप्त कर लेता है। ओशो का साहित्य वर्तमान समय में इस परिभाषा पर खरा उतरता है। साहित्य समीक्षा के शास्त्रीय मान दंडो पर संभवतः उनका साहित्य सौ प्रतिशत खरा न उतरता हो, किंतु सरल – सहज भाषा म काव्य के प्रतीकों और मिथकों का सुंदर परिपाक करके उन्होंन साहित्य के नए प्रतिमान अवश्य गढ़ दिए हैं। यही कारण है कि आज के आधुनिक दौर में एक बहुत बड़े बुद्धिजीवी वर्ग के लिए ओशो साहित्य जीवन शैली का आधार हैं। ओशो की कुल 500 पुस्तकों में से 33 सतों पर 56 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें से 20 मध्यकालीन संत हैं। इन मध्यकालीन संतों पर उनकी 38 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमे उन्होंनें अपना अभिनव दृष्टिकोंण प्रस्तुत किया है। मीरा के काव्य पर प्रकाश डालते हुए ओशो न केवल उनके व्यक्तित्व को उभारते हैं, अपितु उनके काव्य में समाहित गुह्य अर्थों को उदघाटित करते हुए उनके जीवन में हुए विभिन्न घटनाओं का तात्विक विश्लेषण भी करते हैं। यद्यपि ओशो ने अनेक संतों पर प्रकाश डाला है, उनके काव्य–रस में अपने संन्यासियों को रससिक्त किया है, तथापि मीरा उन्हें सर्वाधिक प्रिय ह, उनके ह्रदय के बहुत करीब हैं क्योंकि वे मानते हैं कि भक्ति की जो सुंदरतम सरिता मीरा के अनुभव में बह निकली, वह और दुर्लभ है। ओशो के वचनों से लगता है कि वे स्वयं उसी भक्ति रस की झील में आनंदित मन से नौका विहार करने निकले हो। मीरा के जीवन में घटित एक महत्वपूर्ण घटना पर ओशो पृथक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। जब मीरा को राणा ने जहर दिया, तो मीरा ने उसे ईश्वरीय देन के रूप में स्वीकार करते हुए खुशी खुशी हंसते हुए पी लिया। ओशो के अनुसार यही कारण था कि मीरा को उस जहर का असर नहीं हुआ। वे मानते हैं कि स्वीकार भाव अतिरेक हमारे मन में समाहित हो, तो जहर भी अमृत बन जाता है। ओशो इस संबंध में कहते हैं– ''राणा ने जहर भेजा और मीरा उसे कृष्ण का नाम लेकर पी गई और कहा जाता है– जहर अमृत हो गया, होना ही पड़ेगा। हो ही जाना चाहिए। इतने स्वागत से इतने प्रेम से अगर कोई जहर जहर भी पी ले तो अमृत हो ही जाएगा और अगर तुम क्रोध से, हिंसा से, घृणा से, वैमनस्य से अमृत भी पियो तो जहर हो जाएगा।''[6] मीरा के काव्य पर बोलते हुए ओशो पूर्णतः तल्लीन दिखाई पड़ते हैं। वे उनके व्यक्तित्व के उन परतों को भी उघाड़ते हुए दिखते हैं, जिस तरह अन्य संतों के काव्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने यह नहीं किया। वे मीरा के जीवन में घटित कुछ घटनाओं पर विशेष प्रकाश डालते हैं। वे मीरा के दुखों में सौभाग्य का विषय मानते हैं। यहां तक कि उन्होंने स्पष्ट इंकार कर दिया है कि मीरा पर यद्यपि अनेक विद्वानों ने किताबें लिखी हो, पर उनके अर्थ ही मुझसे अलग होंगे।

प्रतीक उद्घाटन

जैसा कि पूव में उल्लेख किया जा चुका ही कि ओशो संत काव्य के प्रतीक उद्घाटन में सिद्धहस्त हैं। क्योंकि वे जिस चेतना की ऊंचाई से काव्यों को अर्थ दे पाते हैं, वह न भूतों को न भविष्यति है।

भक्तिमति मीरा पर ओशो की चार पुस्तकें प्रकाशित हैं– 'मेर तो गिरधर गोपाल', 'राम रस पीजै', :राम रतन धन पायो' और 'झुक आई बदरिया सावन की'। इन चारों ही पुस्तकों में मीरा के काव्य पर प्रकाश डालते हुए ओशो मीरा की भक्ति की गहराई को प्रदर्शित करने से नहीं चूकते। चूंकि मीरा ओशो के हृदय के बहुत करीब थी, अस्तु उक्त तथ्य मीरा के संबंध में उभरकर सामने आता है। इन कतिपय दृ ष्टांतों से यह स्पष्ट हो जाएगाः–

(क) ''गगन मंडल पे सेज पिया की, किस विधि मिलना होय।''[7]

इस पद में ओशो गगन–मण्डल का प्रतीक अर्थ पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं– ''गगन मंडल शब्द का प्रयोग कबीर ने, दादू ने, मीरा ने एक बहुत विशेष अर्थ में इसका प्रयोग किया है। इसका तो गगन कहते ही हैं, जो आकाश हमको दिखाई पड़ता है। लेकिन भक्त कहते हैंः तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही आकाश है, इतना ही बड़ा। उसे गगन मण्डल कहते हैं। जितना बड़ा आकाश भीतर है, उतना ही बड़ा आकाश बाहर है। दोनों समतुल हैं। तुमने भीतर झाँका नहीं, नहीं तो इतना बड़ा विस्तार वहाँ भी है। सहस्त्रार में जब कोई पहुंचता है तो गगन–मंडल में पहुंचता है। जब अपने सातवें चक्र में कोई थिर हो जाता है, तो भीतर के आकाश में थिर हो जाता है।''[8]

(ख) ''म्हारो जन्म मरण को साथी, थाने नहीं बिसरौं दिन राती।''[9]

इस पद का अर्थ करते हुए ओशो ने साधक या भक्त के लिए सतत सुमिरण को आवश्यक माना है। उन्हीं के शब्दों में– ''मीरा कहती है अब मैं पहचान गई कि कौन मेरा साथी है, कौन असल मेरा साथी है। झूठों से जाग गई। धोखों से सचेत हो गई, सावधान हो गई मीरा कहती है–'थाने नहीं बिसरूं दिन–राती'। कि मैं चाह् तो भी तुझे भूल नहीं पाती। दिन आते, रात आती, विस्मरण नहीं होता। इसलिए सवाल यह नहीं है कि ईश्वर का स्मरण कैसे हो? सवाल यह है कि ऐसी चौतन्य की दशा कैसे बने जहां उसका विस्मरण न हो।''[10]

(ग) ''ऊंची चढ़ चढ़ पंथ निहारूं, रोए रोए अखियां राती।

मीरा कहती है– ऊपर चढ़ चढ़कर दखती हूं। मूलाधार, मणिपुर, अनाहत से तुम्हें देखा, विशुद्धि और आज्ञा चक्र तक सरक आई। सहस्त्रार तक चढ़ आती हूं। कभी–कभी, वहां जहां सहस्त्रदल कमल खिलता है– वहां विराजमान होकर तुम्हें देखती हूं। ऊंचे चढ़–चढ़ कर देखती हू, ताकि तुम्हें भरपूर देख लूँ , ताकि तुम्हें ऐसा देख लूँ जैसे तुम हो।''[11]

(घ) नाद की चर्चा हर संत ने की है, क्योंकि अध्यात्म के मार्ग पर यह एक प्रमुख चरण है, ऐसा पत्थर का मील है, जिससे मंजिल के अंतराल का अनुमान हो जाता है। मीरा ने भी इसकी चर्चा की है। वह कहती है– 'राम रतन धन पायो' एक दूसरे पद में भी वह इसकी चर्चा करती है, जिसके गुह्य अर्थ को ओशो व्यक्त करते हैं –

'माई री मैंने लियो गोविंदो मोल।
कोई कहे छाने, कोई कहे चौड़े, लियो री बजंता ढोल।'

मीरा कहती है कि बंधी बंधाई लकीरे मने नहीं सोची कि भीतर खोजें कि बाहर। मैंने तो उसे ढोल बजा कर पा लिया है। कौन से ढोल की वह बात कह रही है। वह जो अनाहत नाद है, वह जो भीतर छिपा हुआ नाद है, उस पर चोट करती ह, उस पर टंकार करती है। उसकी चोट होते ही, टंकार होते ही नाद बाहर भी फल जाता है।''[12]

(घ) मीरा निराकार के भीतर प्रवेश करके अपने आराध्य को साकार रूप देती है। श्रीकृष्ण की वह अनन्य उपासक है, इसलिए अपने आराध्य को अलग–अलग रूपों में देखती है और इन रूपों को वह विभिन्न प्रतीकों में व्यक्त करती है, जिन्हें ओशो ने बहुत बारीकी से पहचाना है।

यथा–

''बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरत सांवरी सूरत, नैना बने विसाल।''

कृष्ण सांवरे थे, ऐसा नहीं है। हमने इतना ही कहा है सांवरा कहकर कि कृष्ण के सौंदर्य में बड़ी गहराई है, जैसे जहां गहरी नदी होती है, वहां जल सांवला हो जाता है।.....'मोर मुकुट मकराकृति कुंडल' मोर के पंखों से बनाया हुआ मुकुट प्रतीक है इस बात का कि कृष्ण में सारे रंग समाए है। महावीर, बद्ध और राम में एक रंग है। पर कृष्ण में सब रंग है। इसीलिए तो हमने कृष्ण को पूर्णावतार कहा है।''[13]

ओशो ने मीरा को भक्ति की श्रेणी में सर्वोपरि रखा है, उपर्युक्त समस्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है। उनके काव्य पर ओशो का पृथक दृष्टिकोण मीरा–काव्य को नई अर्थवत्ता और मूल्यवत्ता प्रदान करता है। यूं तो मीरा के अनेक पदों पर ओशो ने व्याख्यान दिया है, किंतु जिनमें कुछ अलग दृष्टिकोण झलकता था, उसे इस अध्याय के इस अंश में प्रस्तुत किया गया, ताकि उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हा सके। ओशो मीरा को कवयित्री नहीं मानते, वे उन्हें प्रेम की पुजारिन मानते हैं, जो कृष्ण की भक्ति व प्रेम में खो गई है और जिसने भक्ति के मार्ग पर चलकर परमात्मा तक की यात्रा तय की है। इसलिए वे कहते हैं– ''उसके पद सीधे साधे हैं। वह कोई कवयित्री नहीं है। बैठ बैठ कर मात्रा, छंद नहीं बिठाए हैं

उसने। स्वस्फूर्त हैं ये वचन....मीरा से बड़े कवि हुए हैं, मगर मीरा सा बड़ा भक्त कहां? यह कविता बड़ी और है। अपरुषेय है। जैसे वेद अपरुषेय है, जैसे वेद उतरे हैं, ऋषियों में, जैसे कुरान उतरती है, मोहम्मद में– ऐसे ये वचन उतरे हैं मीरा में और जितने प्यार से गाया है, इतने प्यार से उसने गुंजाया है, अपने स्वाद को जिस रस से बांटा है, किसी ने कभी भी नहीं बाटा है। डुबकी लेना हो तो मीरा में लो। ऐसा घाट और कहीं नहीं है।''[14] ओशो के अर्थ से मीरा के पदों में समाहित सूक्ष्म प्रतीक प्रकट हुए हैं, क्योंकि मीरा की चेतना को उन्होंने हृदय से महसूस किया है। ओशो एक ऐसे जौहरी हैं, जिन्होंने मीरा के काव्य–हीरे में पड़े जंक आदि मैल को पूरी तरह धा लिया, जिससे उस हीर की चमक निखर कर सामने आ गई। ओशो के इस अवदान के लिए जगत हमेशा ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह, महाराज चरण, (2010) संतों की बानी, राधा स्वामी सत्संग ब्यास पंजाब, पृष्ठ–313
2. सिंह, महाराज चरण, (2010) संतों की बानी, राधा स्वामी सत्संग ब्यास पंजाब, पृष्ठ–319
3. सिंह, महाराज चरण, (2010) संतों की बानी, राधा स्वामी सत्संग ब्यास पंजाब, पृष्ठ–311
4. सिंह, महाराज चरण, (2010) संतों की बानी, राधा स्वामी सत्संग ब्यास पंजाब, पृष्ठ–313
5. सिंह, महाराज चरण, (2010) संतों की बानी, राधा स्वामी सत्संग ब्यास पंजाब, पृष्ठ–316
6. ओशो, (2013) मेरे तो गिरधर गोपाल, डायमंड बुक्स पॉकेट नई दिल्ली पृष्ठ–21
7. ओशो, (2017) झुक आयी बदरिया सावन की, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ–114
8. ओशो, (2017) झुक आयी बदरिया सावन की, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ–124
9. ओशो, (2017) झुक आयी बदरिया सावन की, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ–10
10. ओशो, (2017) झुक आयी बदरिया सावन की, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ–17
11. ओशो, (2017) झुक आयी बदरिया सावन की, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ–23
12. ओशो, (2013) मेरे तो गिरधर गोपाल, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली, पृष्ठ–163
13. ओशो, (2013) मेरे तो गिरधर गोपाल, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली, पृष्ठ–29
14. ओशो, (2013) मेरे तो गिरधर गोपाल, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली, पृष्ठ–176